



THE TIMES OF INDIA

Date: 21-11-25

Eat's Your Life

New study on snacks highlights why govt action is critical. But no substitute for personal discipline.

TOI Editorials



Someone trying to lose weight, failing and feeling like a failure – this is among the commonest experiences of modern life. Clinical studies on dieting indicate that only 20% of us succeed at keeping off the weight we lose after a year. Understanding why so many people fail like this should not be confused with fat shaming. This is about fighting a health risk that is as evident as the fact that smoking causes lung cancer. It's in this context that a new series of papers published in Lancet makes a critical two-fold intervention. First, ultra-processed foods have aggressively eroded the individual ability to eat healthy. Second, only a coordinated policy response can restore a food environment that empowers healthier diets.

Take ultra-processed yoghurt – where whole milk is overwhelmed by modified starches, sweeteners, emulsifiers, flavourings and colourings. In your mind, it's the 'healthier' snack option. And who has the time to set curd at home anymore? Women with jobs certainly don't. But the right policies would make a heck a lot of difference.

For example, front-of-package warnings, marketing restrictions for children, tax and fiscal strategies that aren't the handmaidens of giant corporations maximising their profits at the cost of our public health. We need to know how much Frankenfood is hurting us and govts need to stop letting it lie and harm at will. And men need to step up so that traditional cooking isn't put to death by industrial formulations made with little or no whole food.

Ultra-processed foods feel addictive because they are deliberately engineered to hijack human biology. When you eat them compulsively, all the while cursing yourself for being weak, it's actually by design. They have disrupted the body's natural signals for hunger and fullness, pushing you towards continuous snacking. And govt negligence means this wolf can wear sheep's clothing. Something in a carton called 'strawberry' milkshake can be made up of fifty chemicals in the flavouring alone – none of which is actually strawberry. The real fruit is rich in vitamins, fibre and antioxidants – and completely absent sodium and cholesterol. But until policymakers do the right thing, how are you not to seek comfort – whether dealing with study pressure or work stress or loneliness – in chips and cola? Lancet findings notwithstanding, it still comes down to personal discipline. But we can view this with greater empathy.

Because choosing to eat healthy is no less tough than the kind of self-regulation it takes to send your children to study abroad or buy a home.

Date: 21-11-25

Supreme Take

In its opinion on prez reference, SC re-states the checks & balances that keep a democracy ticking.

TOI Editorials



Leave aside the nitty-gritty in CJI-led bench's response to President Murmu's 14 questions to Supreme Court for its opinion – at the heart of which was whether it is top court's remit to 'review' actions by governors or the President. In SC's opinion, governors do not have "unfettered powers" to sit on bills. In the event of that happening, states can seek judicial "review". However, it is not for SC, SC felt, to set timelines. And bills delayed by a governor cannot be said to have "deemed assent", which doesn't exist as a constitutional idea. Both of SC's opinions sharpen the separation of powers. SC also said the top court can issue "limited directions" if governors delay bills for an "inordinate time". In gist, judges could design judicial solutions that do not appear to blur separation of powers.

Of course, in the larger scheme of 'references' vs 'reviews', SC's opinion on this reference is neither judgment nor decree. It does not change the 'deemed assent' SC had granted 10 of TN's bills in April. At the time, SC had said, "We are in no way undermining...the governor. All we say is the governor must act with deference to settled conventions of parliamentary democracy." Whether or not Centre appeals the April order basis SC's response to the presidential reference is beside the point. SC's central argument – in April and now – remains that governors are duty-bound to decide on bills passed by state legislatures within a reasonable time, if states are not to move SC. Political jostling that forces opposition-governed states to seek judicial review is a low point for any constitutional authority. Some argue such gubernatorial conduct only strengthens arguments for abolishing the governor's post altogether. SC's message to governors is clear – why reach the point when states have to come to us?



दैनिक भास्कर

Date: 21-11-25

चीनी घुसपैठ की कोशिशों से सतर्क रहने की जरूरत

संपादकीय

यूके की आतंरिक खुफिया एजेंसी एमआई ने अपने देश के सांसदों को चीनी छद्म-नियोक्ताओं से आगाह किया है। एजेंसी को खबर मिली है कि दरअसल ये चीनी जासूस हैं, जो ब्रिटेन सहित कई बड़े देशों में सांसदों व अन्य प्रभावशाली लोगों को किसी काम के बहाने भारी राशि देते हैं और उनसे खुफिया जानकारी लेते हैं। चीन ने इसी स्कीम के तहत पिछले 20 वर्षों में जहां दुनिया के अनेक गरीब देशों को एक ट्रिलियन डॉलर (भारत के बजट से दूना) दिए हैं, वहीं अमेरिका और ब्रिटेन को भी इतना ही पैसा दिया है। लेकिन इन्हें देने का तरीका छद्म है। इस योजना के तहत चीनी बैंक पहले चीनी टेक कंपनियों को कर्ज देती है। फिर ये कंपनियां अमेरिकी टेक कंपनियों से समझौता करती हैं। ताकि उनकी टेक्नोलॉजी हासिल हो सके। शोध संस्था एड्सडाटा के अनुसार अमेरिका की कई कंपनियां इसे सामान्य व्यापारिक समझौता समझकर अपनी टेक्नोलॉजी चीनी कंपनियों से शेयर कर देती हैं, जिसके जरिए चीन अपने टेक ज्ञान को आगे संवर्धित करता है। जबकि ट्रम्प ने अमेरिकी कंपनियों को अपने बेहतरीन सेमी-कंडक्टर्स और जीपीयू को चीन को बेचने से मना किया है। लेकिन चीन मध्यम दर्जे के सेमीकंडक्टर्स के सहारे भी डीपसीक एआई बनाने में सक्षम रहा। चीनी मंसूबों से हमें भी सतर्क रहने की जरूरत है, क्योंकि चीनी चिप्स भारतीय सुरक्षा में सेंध लगा सकते हैं।



दैनिक जागरण

Date: 21-11-25

संवैधानिक सीमाएं

संपादकीय

यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने विधेयकों को मंजूरी देने के मामले में राज्यपालों को समय सीमा में बांधने की आवश्यकता नहीं समझी। उसे इस निष्कर्ष पर इसलिए पहुंचना पड़ा, क्योंकि कुछ समय पहले तमिलनाडु के मामले में विचार करने वाली सुप्रीम कोर्ट की दो सदस्यीय पीठ इस फैसले पर पहुंच गई थी कि राज्यपालों को एक तय समय में विधेयकों पर निर्णय लेना होगा।

उसने राज्यपालों के साथ राष्ट्रपति को भी समय सीमा में बांध दिया था और तमिलनाडु के लंबित विधेयकों को स्वीकृत भी करार दिया था। चूंकि यह सुप्रीम कोर्ट की ओर से अपनी न्यायिक सीमा का अतिक्रमण करने और संवैधानिक व्यवस्था की अनदेखी करने वाला फैसला था, इसलिए उस पर सवाल उठे और राष्ट्रपति को हस्तक्षेप भी करना पड़ा।

उनकी ही ओर से पूछे गए सवालों का जवाब देने के क्रम में संविधान पीठ ने यह पाया कि दो सदस्यीय पीठ का यह कहना असंवैधानिक था कि यदि विधेयकों को तय सीमा में मंजूरी न मिले तो उन्हें स्वतः स्वीकृत माना जाए। निःसंदेह संविधान पीठ के इस फैसले पर भी बहस होगी, लेकिन इसी के साथ इस पर भी ध्यान दिया जाए कि सुप्रीम कोर्ट से ऐसे फैसले आना शुभ संकेत नहीं, जो संविधान की भावना के खिलाफ जाते हों और जिस पर राष्ट्रपति को प्रश्न पूछने पड़ें।

चूंकि सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने यह कहा कि राज्यपाल या तो विधेयकों को टिप्पणियों के साथ सदन को वापस भेजें या फिर उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रख लें, इसलिए आसार यही हैं कि आगे भी विधेयक लंबित रहने की शिकायत आ सकती है। विधेयकों के लंबित रहने की अवस्था में सुप्रीम कोर्ट ने सीमित दखल देने की बात अवश्य कही है, पर वह राज्यपालों को फैसला लेने को बाध्य नहीं कर सकता।

इसके चलते वैसी समस्या फिर देखने को मिल सकती है, जैसी तमिलनाडु में उभरी। इस समस्या का समाधान निकाला जाना चाहिए, लेकिन खुद विधायिका और कार्यपालिका की ओर से। अच्छा हो कि इस पर राजनीतिक दलों के बीच कोई आम सहमति कायम हो, ताकि विधायिका-कार्यपालिका के बीच मामले न्यायपालिका तक न पहुंचें, जिन पर उसे निर्णय लेने का अधिकार नहीं।

कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका, तीनों को अपनी संवैधानिक सीमाओं का ध्यान रखना चाहिए। जब ऐसा नहीं होता तभी समस्याएं उभरती हैं। यह सही है कि सुप्रीम कोर्ट को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार है, लेकिन इसके नाम पर संविधान की अनदेखी नहीं होनी चाहिए। तमिलनाडु मामले में यह कहा जाना ठीक नहीं था कि यदि राज्यपाल अपना काम समय पर नहीं करते तो हम चुपचाप नहीं बैठ सकते, क्योंकि इस सवाल का कोई जवाब नहीं कि यदि न्यायपालिका समय पर फैसले न ले तो क्या किया जा सकता है?

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 21-11-25

खाई पाटना जरूरी

संपादकीय

सोलहवें वित्त आयोग ने इस सप्ताह अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी। रिपोर्ट को अब तक सार्वजनिक नहीं किया गया है, हालांकि उम्मीद है कि इसे 2026 के बजट सत्र में संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। सोलहवें वित्त आयोग की अनुशंसाएं अप्रैल 2026 से शुरू होने वाले पांच वर्ष के लिए होंगी। ये अनुशंसाएं केंद्र और राज्यों के बीच कर राजस्व के

वितरण को आकार देने के अलावा विभिन्न श्रेणियों के तहत राज्यों के बीच फंड आवंटन से संबंधित होंगी। इस संबंध में यह बात ध्यान देने लायक है कि दक्षिण भारत के कई राज्यों ने अपनी घटती हिस्सेदारी को लेकर चिंता जताई है।

इसी समाचार पत्र में प्रकाशित एक हालिया विश्लेषण दिखाता है कि केंद्र सरकार के कर बंटवारे में दक्षिण भारत के पांच राज्यों की संयुक्त हिस्सेदारी 2010-11 के 19 फीसदी से घटकर 2025-26 में 16 फीसदी रह गई। ऐसे में संभव है कि यह मुद्रा फिर से उठे क्योंकि सोलहवें वित आयोग की अनुशंसाओं में अतीत से किसी खास बदलाव की बात नहीं कही गई है।

दक्षिण के राज्यों की चिंताएं समझी जा सकती हैं, लेकिन एक संघीय ढांचे में हमेशा यह उम्मीद रहेगी कि जो राज्य पिछड़ रहे हैं उन्हें मदद पहुंचाई जाएगी और यह सुनिश्चित किया जाएगा कि अधिक समतापूर्ण विकास संभव हो सके। इसके अलावा आंकड़े दिखाते हैं कि प्रति व्यक्ति आधार पर दक्षिण भारत के राज्यों के संसाधन बेहतर हैं।

उदाहरण के लिए चालू वर्ष में केरल की प्रति व्यक्ति व्यय 86,000 रुपये से अधिक है, बिहार में यह केवल 24,000 रुपये के करीब है। ध्यान देने वाली बात है कि 2020-21 और 2025-26 के बीच देश के सबसे गरीब राज्यों में प्रति व्यक्ति व्यय आय बढ़कर करीब दोगुना हो गया है। हालांकि इसका आधार कम रहा है जबकि अमीर दक्षिण भारतीय राज्यों में यह समेकित स्तर पर 59 फीसदी तक बढ़ा है।

यद्यपि, व्यय में तेज वृद्धि आय में तेज वृद्धि में परिवर्तित नहीं हुई है। दक्षिणी राज्यों की औसत प्रति व्यक्ति आय 2009-10 में गरीब राज्यों की तुलना में 2.1 गुना थी, जो अब बढ़कर 2.8 गुना हो गई है। इससे संकेत मिलता है कि गरीब राज्यों को विकास कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए कर बंटवारे में अधिक हिस्सेदारी आवश्यक हो सकती है, लेकिन यह तीव्र आर्थिक वृद्धि के लिए पर्याप्त नहीं है। तीव्र आर्थिक वृद्धि ही प्रति व्यक्ति आय बढ़ाकर इस अंतर को कम करने में मदद कर सकती है।

यह एक जटिल नीतिगत चुनौती पेश करता है जिससे पिछड़ रहे राज्यों और केंद्र सरकार दोनों को मिलकर जूझना होगा। क्योंकि अकेले राजकोषीय हस्तांतरण शायद जरूरी बदलाव लाने में संभव न हो सके। इसका कोई आसान उत्तर नहीं है। यह कहा जा सकता है कि इन क्षेत्रों की ओर और अधिक निजी निवेश लाया जा सकता है लेकिन कारोबारी इकाइयां शायद बेहतर राज्यों में ही निवेश करना पसंद करें।

ऐसा इसलिए क्योंकि उन राज्यों में उन्हें बेहतर माहौल मिल सकता है। ऐसे में यह महत्वपूर्ण होगा कि पिछड़ रहे राज्य अपने संसाधनों का इस्तेमाल ज्यादा बेहतर तरीके से करें और निवेश जुटाने के लिए जरूरी अधोसंरचना तैयार करें। उन्हें कारोबारियों की चिंताओं को भी सक्रियता से दूर करना होगा ताकि कारोबारी सुगमता में सुधार किया जा सके।

केंद्र और राज्यों के समक्ष एक और चुनौती है। कुछ राज्यों पर बहुत अधिक ऋण है, जो विकास की संभावनाओं को प्रभावित कर सकता है। पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च की हालिया रिपोर्ट के अनुसार, 19 राज्यों में बकाया देनदारियां सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) के 30 फीसदी से अधिक हैं, जिनमें केरल भी शामिल है। पंजाब और हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में यह जीएसडीपी के 40 फीसदी से भी अधिक हैं।

इस समस्या से निपटने के लिए एक तंत्र की आवश्यकता होगी। राज्यों में अधिक ऋण से सामान्य सरकारी ऋण और उधारी की जरूरतें बढ़ जाती हैं, जिससे पूरी अर्थव्यवस्था के लिए धन की लागत प्रभावित होती है। राज्यों के बीच आय अंतर को कम करना और ऊंचे स्तर के ऋण मसले का समाधान करना प्रमुख नीतिगत चुनौतियां हैं। यह देखना दिलचस्प होगा कि वित्त आयोग इन मुद्दों से कैसे निपटता है।
